www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
गुरुवार 1 अगस्त 2019

दैनिक जागरण

संगीत आत्मा की जुबान होती है

एक उद्यमी की मौत

अपने उद्यम कौशल से एक विशाल कारोबार खड़ा करने वाले वीजी सिद्धार्थ की आत्महत्या कारोबार जगत के साथ आम लोगों का ध्यान खींचने वाली है। मंगलुरु की नेत्रावती नदी से उनका शव मिल जाने के बाद इसे लेकर कयास लगाए जा रहे हैं कि आखिर सफलता की इबारत लिखने वाले वीजी सिद्धार्थ ने किन हालात में फंसकर जान दे दी? इस सवाल पर जितने मुंह उतनी बातें वाली स्थिति है। यह स्वाभाविक भी है, लेकिन इस नतीजे पर पहुंचना भी जल्दबाजी और एक तरह से समस्या का सरलीकरण है कि कैफे कॉफी डे के संस्थापक टैक्स सिस्टम की सख्ती का शिकार हो गए। इससे इन्कार नहीं कि वीजी सिद्धार्थ टैक्स संबंधी विवादों से घिरे हुए थे और उन्होंने अपने अंतिम पत्र में एक टैक्स अधिकारी के सख्त रवैये का जिक्र किया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि उन्होंने यह भी लिखा है कि वह कर्जदारों के दबाव से तंग आ गए हैं। इसमें दोराय नहीं कि कारोबारियों को तमाम तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन आम तौर पर वे इन समस्याओं का सामना करना भी बखूबी जानते हैं और इसीलिए कामयाबी हासिल करते हैं। यह भी ध्यान रहे कि विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए कामयाबी पाने वाला कोई शख्स आत्महत्या करने का फैसला तभी करता है जब हालात बहुत गंभीर हो जाते हैं।

फिलहाल किसी के लिए भी उन कारणों की तह तक पहुंचना कठिन है जिनके चलते कॉफी किंग वीजी सिद्धार्थ ने अपनी जान दे दी, लेकिन चूंकि उनकी मौत के कारणों में टैक्स सिस्टम की सख्ती का भी उल्लेख किया जा रहा है इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार कैफे कॉफी डे के संस्थापक की आत्महत्या के कारणों का पता लगाने के लिए सक्रिय हो। यह इसलिए और भी जरूरी है, क्योंकि टैक्स सिस्टम की सख्ती को टैक्स टेररिज्म की संज्ञा दी जा रही है। निःसंदेह यह कोई अच्छी स्थिति नहीं कि एक ऐसे समय जब सरकार उद्योग-व्यापार को गति देने की कोशिश में लगी हुई हो तब उसकी टैक्स व्यवस्था को टैक्स टेररिज्म के तौर पर परिभाषित किया जाए। इस तरह की परिभाषाएं उद्योग-व्यापार जगत के लिए प्रतिकूल माहौल का निर्माण करने वाली साबित हो सकती हैं। बीते दिनों आयकर दिवस के अवसर पर वित्त मंत्री ने टैक्स विभाग के अधिकारियों को मधुमक्खी की तरह काम करने की सलाह देते हुए यह भी कहा था कि जो टैक्स सिस्टम से खेल रहे हैं उन पर पैनी नजर रखी जाए। यह एक सच्चाई है कि कुछ कारोबारी अभी भी दो नंबर के तौर-तरीके अपना रहे हैं, लेकिन सरकार को यह देखना होगा कि सख्ती की जद में केवल वही आएं।

हम भी कसूरवार

'जमीनी हकीकत की जानकारी दीजिए, हमें योजनाओं की कहानी मत सुनाइए...।' पटना हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश एपी शाही और न्यायमूर्ति अंजना मिश्रा की खंडपीठ ने अवकाश के दिन (27 जुलाई को) जन समस्याओं पर विशेष सुनवाई के दौरान यह टिप्पणी की थी। हाईकोर्ट की सख्ती नई नहीं है। पहले भी बिहार में प्रशासनिक तंत्र को फटकारा गया है। कोर्ट की टेढ़ी नजर का असर इस बार होना बाकी है। अतिक्रमण, जाम, जल निकासी, वाहन पड़ाव और अन्य मामलों पर राज्य सरकार के वरिष्ठ अधिकारी तलब हुए थे। अगली सुनवाई 31 अगस्त को होगी। जिन जनसमस्याओं पर सुनवाई हुई, वे केवल पटना की ही नहीं हैं। बिहार के अधिकतर शहरों में जाम और अतिक्रमण नासूर बन चुका है। हां, पटना में यह जरूर चरम पर है। अतिक्रमण एक ओर से हटाया जाता है तो दूसरी ओर फिर पसर जाता है। जाम के लिए केवल प्रशासनिक व्यवस्था ही दोषी नहीं है। जनता भी कसूरवार है। बेतरतीब तरीके से वाहनों की पार्किंग या ड्राइविंग इसकी बड़ी वजह है। जिधर नजर दौड़ाइए, वहीं बेचैनी दिखती है। एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में हम संकरे रास्तों पर भी ओवरटेक करने से बाज नहीं आते। गाड़ी चलाते समय हमारे पास धैर्य नहीं होता। दूसरी बात यह कि हम सार्वजनिक परिवहन की आदत नहीं डालते हैं। हमेशा कोशिश होती है कि अपनी ही गाड़ी से सफर करें। जरूरत से ज्यादा 'स्टेटस सिंबल' के चक्कर में भी वाहनों का बोझ सड़कों पर बढ़ता जा रहा है।
यह जरूरी है कि शहर में पार्किंग, फुटपाथ या वेंडिंग जोन की सुगठित व्यवस्था हो। पटना में पूरे राज्य से गाड़ियां आती हैं। एक उदाहरण देखिए-स्टेशन के सामने जो पार्किंग है, उसका पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। इसे कौन सुनिश्चित कराएगा? जाहिर है, स्थानीय प्रशासन की यह जिम्मेदारी है, लेकिन लोगों को स्वयं को भी नियंत्रित करना होगा। अकेले प्रशासन कुछ नहीं कर सकता। किसी थानेदार के अकेले चाह लेने मात्र से अतिक्रमण से मुक्ति संभव नहीं है। जरूरत इस बात की है कि अतिक्रमणकारियों की पहचान हो। उन पर ठोस कार्रवाई हो। दैनिक जीवन में वेंडरों का व्यापार बंद नहीं करा सकते। उनको व्यवस्थित जरूर कर सकते हैं। हाईकोर्ट की चिंता जायज है।

राजनीति का समाज से टूटता रिश्ता

बद्री नारायण

सामाजिक सेवाभाव का राजनीति से जुड़ाव निर्मित करने का मिशन ही भारतीय जनतंत्र की राजनीति को और ज्यादा गहरा, प्रभावी एवं सार्थक बना पाएगा

भारतीय राजनीति राजसत्ता की राजनीति में सिमटती चली गई है, जबकि इसका मूल स्वर समाज बदलने की राजनीति से जुड़ा रहा है। आजादी की लड़ाई के वक्त से राष्ट्र निर्माण की राजनीति समाज निर्माण की राजनीति से गहराई से जुड़ी रही। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, डॉ. राममनोहर लोहिया अपनी राजनीति को सदा से ही सामाजिक राजनीति का रूप देते रहे। महात्मा गांधी की आजादी की लड़ाई की संकल्पना अछूतों, नारियों एवं गरीबों की मुक्ति से भी जुड़ी थी। आजादी के बाद भी यदि आप 70 के दशक तक की राजनीति का स्वरूप देखें तो पाएंगे कि हमारे कई राष्ट्रीय स्तर के नेता जैसे-इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, कामराज, चौधरी चरण सिंह, दीनदयाल उपाध्याय अपनी राजनीति को सामाजिक राजनीति से जोड़ते रहे। इन नेताओं का राजनीतिक प्रभाव उनकी सामाजिक शक्ति से ही जुड़ा रहा। 70 के दशक के बाद हालांकि भारतीय राजनीति में अपराधी, माफिया, पूंजीपति आदि बड़े पैमाने पर सक्रिय हुए, किंतु वे कभी भी भारतीय राजनीति की मुख्यधारा नहीं बन पाए।

तदोपरांत 1990 में नव-उदारवादी बाजार व्यवस्था के भारत में लागू होने के बाद भारतीय जनतंत्र की राजनीति गवर्नेंस की राजनीति में तब्दील हो गई। गवर्नेंस की राजनीति जटिल है। इसकी जटिलता ने भारतीय राजनीति में विशेषज्ञों की महत्ता बढ़ा दी। प्रशासन का कार्य ज्यादा से ज्यादा जटिल एवं टेक्निकल होता गया। फलतः राजनीतिक प्रबंधक, वित्तीय विशेषज्ञ, प्रशिक्षित बैंकर्स, टेक्नोक्रेट्स, कानूनविदों पर जनाधार वाले नेताओं की निर्भरता बढ़ी। इस निर्भरता के कारण भारतीय राजनीति में ऐसे विशेषज्ञों की एक पूरी पीढ़ी आ गई। ऐसे नेताओं में से अनेक समाज की जड़ों से कटे हुए थे। वे आंकड़ों और मैनेजमेंट की राजनीति करते रहे। ऐसे नेताओं की राजनीति में सामाजिक जुड़ाव लगभग न के बराबर देखा गया। बौद्धिक एवं राजनीतिक सलाहकार ऐसे नेता लंबे समय तक भारतीय राजनीति में विकास की राजनीति के मूलाधार के रूप में सक्रिय रहे। इन्हें ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने चुनाव प्रचार में लुटियन दिल्ली के राजनीतिक पंडित का विशेषण दिया था।

हालांकि इनमें से कइयों ने प्रशासन के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण एवं सफल काम भी किए, किंतु इनकी राजनीति शासन प्रबंधन तक ही सीमित रह गई। इनका जनता के साथ कोई जुड़ाव नहीं बन पाया। लिहाजा भारतीय शासन एवं विकास की राजनीति मूलतः सत्ता की राजनीति में तब्दील होकर रह गई। भारतीय राजनीति एवं सामाजिक राजनीति का संबंध धीरे-धीरे टूटता-सा गया। सामाजिक राजनीति का जिम्मा एनजीओ को सौंपकर हम अपनी नैतिक जिम्मेदारी से मुक्त हो गए। चुनाव के समय की बड़ी रैलियों, फेसबुक, ट्विटर, टीवी चैनल्स जनता से संवाद के साधन के रूप में रह गए। ऐसे राजनेताओं का जनता के साथ सीधा संवाद खत्म होता गया। ऐसे में जनता की आकांक्षाओं को समझने का राजनीतिक जरिया ऐसे नेताओं के पास नहीं रहा, जो मात्र सत्ता की राजनीति करने में लगे रहे। जनता एवं नेताओं के बीच एक किस्म का अप्रत्यक्ष, आभासी एवं अदृश्य प्रकार का संबंध विकसित होता गया।

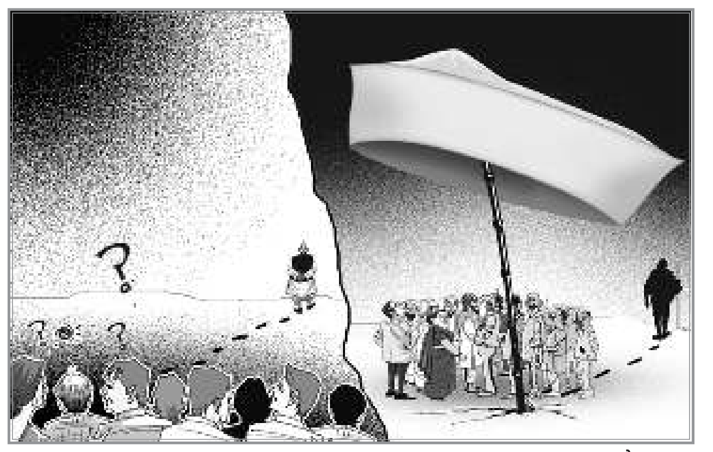

अवधेश राजपूत

हाल में पीएम मोदी ने लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला की तारीफ में कहा था कि अब सामाजिक राजनीति का समय आ गया है। उन्होंने गुजरात में आए भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदा में बिरला द्वारा किए गए कार्यों की सराहना की। बिरला द्वारा जरूरतमंद बच्चों के लिए किए गए कार्यों की भी प्रधानमंत्री ने बार-बार प्रशंसा की। पुनः उन्होंने युवा सांसदों के साथ संवाद में उन्हें सामाजिक कार्यों से जुड़ने की नसीहत दी। उन्होंने आगे कहा अब नेताओं को समाज सेवा से जुड़ना चाहिए, क्योंकि जनता विशुद्ध राजनीति की जगह सामाजिक कार्यों से ज्यादा प्रभावित होती है। यह एक प्रकार से नरेंद्र मोदी द्वारा सामाजिक राजनीति की पुनः वापसी का आदर्श रचने जैसा है। यह आदर्श कितना सच में तब्दील होगा, यह तो कहना मुश्किल है, किंतु ऐसी अपीलों द्वारा प्रधानमंत्री मोदी भारतीय राजनीति को नया आयाम दे रहे हैं। सामाजिक कार्य से जुड़कर राजनेता एक नई राजनीतिक राह का निर्माण कर सकते हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि यह मात्र एक मौखिक उपदेश न होकर भारतीय समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

सामाजिक सेवाभावी कार्य के इस अभियान की प्रेरणा कहीं न कहीं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रीति-नीति से जुड़ी है। नरेंद्र मोदी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रशिक्षित व्यक्तित्व हैं। बहुत संभव है कि उन्होंने यह अंतः प्रेरणा संघ से अपने संबंधों के कारण पाई हो। यह भी हो सकता है कि उन्होंने यह अंतःप्रेरणा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की राजनीति के मंथन से प्राप्त की हो। यह भी संभव है कि हिंदू धार्मिक पंथों ने नरेंद्र मोदी को प्रभावित किया हो। चाहे जिन भी प्रेरणा स्रोतों से उन्हें इस अपील की अंतः प्रेरणा मिली हो, अगर इसका थोड़ा भी असर उनके सांसदों पर हुआ तो भारतीय राजनीति का चेहरा थोड़ा-बहुत तो बदलेगा ही।

इसमें दोराय नहीं कि मात्र सत्ता की राजनीति हमें सीमित एवं स्वार्थी बनाती है। इसके साथ समाज का जुड़ाव, सामाजिक मुद्दों का जुड़ाव हमें विकसित एवं विस्तारित करता है। यह हमें सत्ता की राजनीति के अंधे गलियारे से निकालकर एक ताजी हवा देता है। नरेंद्र मोदी ने अपनी इन्हीं अपीलों एवं सुझावों में राजनीति की सामाजिक संवेदना की बात की है। नीरस, निष्ठुर एवं लोलुप किस्म की राजनीति का अर्थविस्तार इसी सामाजिक संवेदना के होने से ही संभव है। अच्छा होता कि अन्य राजनीतिक दलों का नेतृत्व पक्ष भी अपने राजनीतिक नेतृत्व को एक प्रकार की सामाजिक राजनीति विकसित करने का सुझाव देता।

संभव है कि ऐसी सोच भविष्य में और प्रभावी होकर उभरे, यह भी हो सकता है कि यह अपील मात्र खबर में तब्दील होकर रह जाए, किंतु भारतीय जनतंत्र एवं राजसत्ता की राजनीति को कहीं न कहीं सामाजिक सेवाभाव से जुड़ना ही होगा। यही सेवाभाव लोगों में राजनीति के प्रति हो रहे मोहभंग को खत्म कर एक नया विश्वास जगा पाएगा। मोदी अपनी विविध नीतियों से जनता में अपने एवं अपनी राजनीति के लिए विश्वास भाव निर्मित करते जा रहे हैं। यहीं उन्हें चुनावों में बड़ी सफलता दिला रहा है। विपक्ष को भी मोदी की ऐसी कार्य नीतियों एवं रणनीतियों की काट तलाशनी होगी। सामाजिक सेवाभाव का राजनीति से जुड़ाव निर्मित करने का मिशन ही भारतीय जनतंत्र की राजनीति को और ज्यादा गहरा, प्रभावी एवं सार्थक बना पाएगा। यह अलग बात है कि समाज को देखने की दृष्टि में राजनीतिक दलों में विभेद है, परंतु विकसित एवं शांतिपूर्ण समाज रचने की जिम्मेदारी सबकी है।

(लेखक प्रयागराज स्थित गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं)

response@jagran.com

भारतीय भाषाओं के समक्ष बड़ी चुनौती

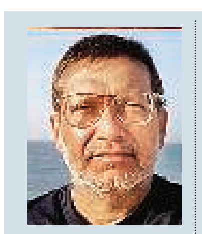

शंकर शरण

अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व और कई मामलों में एकाधिकार के कारण कई भारतीय भाषाएं दुर्बल होकर विलुप्ति के कगार पर हैं

एक बड़े शिक्षा निदेशक ने कहा कि यहां शिक्षा में भाषा-नीति की समस्या बहुत गंभीर हो चुकी है। कितनी भी बहस हो, कोई समाधान नहीं निकलता। ऐसे में जो फॉर्मूला चल रहा है, वही चलाते रहना ठीक है। वह सचमुच एक ऐसा सत्य कह रहे थे, जिसकी आशंका लगभग दो सौ साल पहले ही व्यक्त की गई थी। रोचक यह है कि इस सच को उन अंग्रेजों ने देखा था जो लॉर्ड मैकाले के विरोधी थे। मैकाले का विश्वास था कि भारतीय भाषाओं में कोई ज्ञान ही नहीं है। इसलिए भारतीयों की भलाई के लिए उन्हें अंग्रेजी और यूरोपीय शिक्षा देनी चाहिए, पर विरोधी अंग्रेजों को आशंका थी कि 'पूरी जनता को शब्दों और विचारों के लिए किसी दूर, अनजान देश पर पूरी तरह निर्भर बनाकर हम उनका चरित्र गिरा देंगे, उनकी ऊर्जा मंद कर देंगे और यहां तक कि उन्हें किसी भी बौद्धिक उपलब्धि की आकांक्षा रखने में असमर्थ बना देंगे।'

आज वही आशंका चरितार्थ हो रही है। सारा विमर्श राजनीतिक और तकनीकी दृष्टि से हो रहा है। मानों भाषा कोई निर्जीव यंत्र हो, इसका बच्चे के आत्मविश्वास, चरित्र या बौद्धिक विकास से कतई संबंध न हो। कुछ लोग पहली कक्षा से ही अंग्रेजी पढ़ाना चाहते हैं, कुछ हिंदी के प्रति दुराव दर्शाते हैं तो कुछ बचपन से ही कई भाषाएं पढ़ाने की बात करते हैं। ऐसे लोग शिक्षा में भाषा का स्थान ही नहीं समझते। भाषा शिक्षा की नींव है। नींव सशक्त हुए बिना भवन अस्थिर रहेगा और याद रखें कि नींव दो-तीन नहीं हुआ करतीं! हमारे बड़े-बड़े लोग भी यह मशहूर बात भूल गए हैं कि बच्चे की शिक्षा अपनी भाषा में सर्वोत्तम होती है। इसलिए बच्चे की पूरी क्षमता अपनी भाषा पर अधिकार करने में लगानी चाहिए। अपनी भाषा पूरी संवेदना से सीख ले तो उसके लिए दूसरी, तीसरी भाषाएं सीखना सदैव आसान रहेगा।

परंतु राजनीति और करियर के नाम पर यहां शिक्षा को जैसे नष्ट किया गया, उसे समझाना कठिन है। अंग्रेजी के बढ़ते अधिकार और कई मामलों में एकाधिकार के कारण सभी भारतीय भाषाएं दुर्बल होकर लुप्त होती जा रही हैं। हम भूल चुके हैं कि अपनी भाषा माता समान होती है। उसके बिना पालन-पोषण रामभरोसे ही रहेगा। आज हमारी अनेक राष्ट्रीय दुर्बलताओं, समस्याओं का मूल कारण इसी में है। यह किसी सरकार की नहीं, हमारी अपनी समस्या है। बच्चों को पहली कक्षा से ही अंग्रेजी पढ़ाना पागलपन, अत्याचार और अपराध है। इस पर रवींद्रनाथ टैगोर की सवा सौ वर्ष पहले कही गई मार्मिक बात आज भी अक्षरशः सत्य है। जैसे मिट्टी से अंकुरित होते बीज को समय रहते पर्याप्त जल, प्रकाश और वायु की अनिवार्य आवश्यकता होती है, वैसे ही दुनिया को समझना शुरू करने वाले बालक को अपनी भाषा के सर्वोत्तम साहित्य से परिचित कराना अनिवार्य है। उसकी संपूर्ण निहित क्षमता और व्यक्तित्व के उभरने का मूल साधन वही है।

भाषा केवल पाठ्य-पुस्तक, अखबार पढ़ने या गपशप से नहीं आती। असली भाषा साहित्य की भाषा ही होती है। जिससे जीवंत संबंध रखने से ही वह आती है। उसके बिना अच्छी भाषा और बुद्धि की चाह छोड़ दें। अपनी भाषा पर भरोसा और लगाव के बिना कोई भाषा-नीति सफल होने वाली नहीं। ब्रिटेन, अमेरिका से भी सीखना चाहिए कि किस तरह उन्होंने अपनी भाषा में अपना ही नहीं, संपूर्ण विश्व के महान साहित्य और विद्वत संस्करणों को सुलभ कराया। वह कोई सरकार का काम नहीं था। उसे अदद लेखकों, प्रकाशकों और संस्थाओं आदि ने सहज धर्म के रूप में स्वेच्छापूर्वक किया। उस तुलना में स्वतंत्र भारत में हमने अपनी भाषाओं के साथ क्या किया? अपने श्रेष्ठ साहित्य को हमने घर-निकाला दे दिया! यहां महान भारतीय साहित्य और साहित्यकारों की रचनाएं कहीं सुलभ नहीं हैं। जो हैं भी, वे अधिकांश त्रुटिपूर्ण, गंदे, उपेक्षित रूप में छापी जाती हैं। जबकि इन्हें सुंदर रूप में देश के कोने-कोने में सबके लिए सुलभ कराने के लिए समाज या सरकार के पास धन की कमी नहीं है! बस इसका महत्व और आवश्यकता नहीं समझी गई। इससे होने वाले लाभ और न करने से होने वाली हानि नहीं आंकी गई। अपनी भाषा, साहित्य और शिक्षा के लिए यह सहज कार्य यूरोप के छोटे-छोटे देश भी सौ साल से करते आ रहे हैं। वैसे भी इस कार्य का कोई विकल्प नहीं है। अन्यथा जैसे ग्रीक या मिस्र आदि सभ्यताएं लुप्त हो गईं, वह किसी रूप में भारतीय सभ्यता के साथ भी हो सकता है, बल्कि ऐसे भी हो सकता है कि पता भी न चले कि वह कब खत्म हो गई! भाषा अपने समाज की संस्कृति को अनूठी अभिव्यक्ति देती है। ऐसे में यदि भाषा कमजोर होगी तो उसका असर संस्कृति पर भी पड़ेगा।

भारत में 'कई भाषाओं' की बाधा वाली बात काल्पनिक है। पहले तो सभी राज्यों में अपनी-अपनी भाषा में शिक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं। फिर अधिकांश भारतीय भाषाओं में कोई बड़ा अंतर नहीं है। इसीलिए सदियों से भारत में सहज सामाजिक-सांस्कृतिक एकता रही है। वर्णमाला से लेकर शब्दावली तक में भारी समरूपता है। इसीलिए संस्कृत पूरे देश में एक जैसी सम्मानित है तथा हिंदी भी संपूर्ण भारत में बोली, समझी जाती है। हमारी भाषाओं में मुख्यतः लिपि का अंतर है, जिसे भाषाओं के अंतर के रूप में अतिरंजित दर्शाया जाता है। वस्तुतः अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व ने कुछ दशकों में ही सभी भारतीय भाषाओं की दुर्गति करके रख दी है। हमारी अपनी भाषा के शब्दों, सूत्रों, मूल्यों आदि के मूल अर्थ खोते जा रहे हैं। उन अर्थों को अनुवादित नहीं किया जा सकता जो समाज के सदियों के अनुभव से उपलब्ध हुए थे। उन्हें अंग्रेजी में विकृत किए जाकर पुनः भारतीय भाषाओं में बलपूर्वक थोपा गया है। आज यहां पढ़े-पढ़ाए जाने वाले सामाजिक ज्ञान तथा सिनेमा, सीरियलों में भी इस दुर्गति के दुखद उदाहरण देख सकते हैं। इससे हमारी कल्पना-शक्ति और विचार-शक्ति क्षीण हुई है।

बहरहाल ये सभी बिंदु समकालीन विमर्श में लुप्त हैं। उसमें किसी लक्ष्य का संधान या किसी गड़बड़ी को रोकने जैसी चेतना नहीं दिखती। जब तक भारतीय भाषाओं को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम ही नहीं, बल्कि अपनी भाषा पर अधिकार कर लेना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य नहीं बनाया जाएगा तब तक शैक्षिक और संस्कृति में गिरावट को रोकना कठिन है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

संघर्ष

जीवन में संघर्ष का बहुत व्यापक प्रभाव है। उत्पत्ति से लेकर जीवन के अंतिम क्षणों तक किसी न किसी तरह मनुष्य संघर्ष करता रहता है। यह संघर्ष प्राकृतिक, परिस्थितिवश या खुद से लक्ष्य प्राप्ति तक हो सकता है। संघर्ष मानव जीवन का वह पर्याय है जो कष्टदायी होने के बावजूद भी उद्देश्य प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी परिस्थितियों को अपने लक्ष्य के मुताबिक पलट सकता है। किसी भी सफल व्यक्ति के जीवन की राह में एक चीज सामान्य रूप से पाई जाती है, वह है 'संघर्ष'। संघर्ष व्यक्ति को अपने अंदर प्रौढ़ता और परिपक्वता विकसित करने में अहम भूमिका निभाता है। इसके द्वारा व्यक्ति के अंदर इच्छाशक्ति बलवान होती है और धैर्य जैसा गुण स्वतः विकसित होने लगता है। यह व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने विश्वास और संकल्प को दृढ़ता से संजोए रखने की मानसिक अवस्था भी प्रदान करता है।

संघर्ष अपने आप में खुद प्रेरणा है। व्यक्ति जब अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए या परिस्थितियों से संघर्ष कर रहा होता है तो उसके अंदर प्रतिकूल अवस्था में विचलित न होने, जीवन की प्रत्येक बाधाओं और कठिनाइयों से स्वतः लड़ने की मानसिक स्फूर्ति और ऊर्जा आ जाती है, जो नकारात्मकता को व्यक्ति के पास भी नहीं फटकने देती और व्यक्ति संकल्पित होकर लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है। संघर्ष के वक्त हमें अपने अंदर आंतरिक शांति को बनाए रखना सबसे बड़ी चुनौती होती है, पर हमें पूर्ण निष्ठा से ध्यान को लक्ष्य की तरफ रखते हुए प्रयास और परिश्रम करते रहना चाहिए। कठिनाइयों में भी हमें अपने भीतर आशा की किरण को जगाए रखना आवश्यक है जिससे तमाम मानसिक अवरोधों से पार पाया जा सकता है।

जीवन के प्रत्येक क्षण हमारे अनुकूल नहीं होते और न ही सबके लिए संसाधन पर्याप्त होते हैं, हमें संघर्ष का रास्ता चुनकर अपने उद्देश्यों को पाना होता है। यही सफलता का एकमात्र स्थायी मार्ग होता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन में जिंदगी का दूसरा नाम संघर्ष ही है।

शिवांशु राय

पहचान हासिल करने का जरिया

अमृत कुमार

भौगोलिक सांकेतिक पहचान (जीआइ टैग) किसी उत्पाद की गुणवत्ता और उसके विशेष होने का सुबूत भी है

ओडिशा के ऐतिहासिक रसगुल्ले को जियोग्रफिकल इंडिकेशन अर्थात भौगोलिक सांकेतिक पहचान (जीआइ टैग) की मान्यता मिल गई है। इस विषय पर पश्चिम बंगाल और ओडिशा के बीच विवाद चल रहा था। ओडिशा का दावा रहा है कि पुरी में पहली बार 12वीं सदी में भगवान जगन्नाथ मंदिर में यह मिठाई परोसी गई थी। इस बात का जिक्र 15वीं सदी के उड़िया काव्य 'दांडी रामायण' में भी किया गया है। इसलिए यह जगन्नाथ संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। वहीं पश्चिम बंगाल सरकार ने दावा किया था कि उनके राज्य में 1868 में नवीन चंद्र दास ने रसगुल्ले का आविष्कार किया था। इसी आधार पर ओडिशा के रसगुल्ले को जीआइ टैग मिला है। भारतीय संसद ने 1999 में वस्तु भौगोलिक पहचान (पंजीकरण एवं संरक्षण) कानून लागू किया था। इस आधार पर भारत के किसी भी क्षेत्र में पाई जाने वाली कोई विशिष्ट वस्तु का कानूनी अधिकार उस राज्य को दे दिया जाता है। भारत में जीआइ टैग किसी खास फसल, प्राकृतिक और मानव निर्मित सामानों को दिया जाता है। जीआइ टैग का काम उस खास भौगोलिक परिस्थिति में पाई जाने वाली वस्तुओं के दूसरे स्थानों पर गैर-कानूनी प्रयोग को रोकना है।

किसी भी वस्तु को जीआइ टैग देने से पहले उसकी गुणवत्ता और पैदावार की जांच की जाती है। यह तय किया जाता है कि उस खास वस्तु पर सबसे अधिक अधिकार निर्धारित राज्य का ही है। जीआइ टैग भी इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स का हिस्सा है जो पेटेंट्स से मिलता-जुलता है। जहां जीआइ टैग किसी भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर दिए जाते हैं, वहीं पेटेंट नई खोज और आविष्कारों को बचाए रखने का जरिया हैं। जीआइ के अधिकार हासिल करने के लिए इसके चेन्नई स्थित कार्यालय में आवेदन करना पड़ता है। इसके अधिकार व्यक्तियों, उत्पादकों और संस्थाओं को दिए जा सकते हैं। एक बार रजिस्ट्री हो जाने के बाद दस वर्षों तक यह टैग मान्य होता है, जिसके बाद इन्हें फिर रिन्यू करवाना पड़ता है। पहला जीआइ टैग साल 2004 में दार्जिलिंग चाय को दिया गया था। भारत में अभी तक 300 से ज्यादा वस्तुओं को जीआइ टैग दिया गया है। जैसे-बनारसी साड़ी, मैसूर सिल्क, कोल्हापुरी चप्पल आदि इसी कानून के तहत संरक्षित हैं।

जीआइ टैग किसी उत्पाद की गुणवत्ता और उसकी अलग पहचान होने का सुबूत भी है। जीआइ टैग मिलने के बाद अंतरराष्ट्रीय बाजार में उस वस्तु की कीमत और उसका महत्व बढ़ जाता है। इस वजह से उसका निर्यात करना आसान हो जाता है। देश-विदेश से लोग एक खास जगह पर उस विशिष्ट सामान को खरीदने आते हैं। इस कारण पर्यटन भी बढ़ता है।

देखा जाए तो भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में ऐसी हजारों वस्तुएं होंगी जो अपनी खास पहचान रखती होंगी। उन्हें जीआइ टैग दिलाकर उनको देश-दुनिया के सामने लाया जा सकता है। ऐसे में सरकार को जीआइ टैग और इसके फायदों के बारे में अधिक से अधिक लोगों को बताना चाहिए।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

तथ्यों की लिंचिंग का खतरनाक चलन

राजीव सचान का लेख 'पतंगबाजी सरीखी चिट्ठीबाजी' पढ़ा। वामपंथी सोच वाले 49 पत्र-लेखकों ने जिस चालाकी से लिंचिंग विषय पर अर्ध-सत्य को पूर्ण सत्य के रूप में पेश किया है, वह बेहद दुखदायी है। वास्तव में भारत और हिंदू समाज को बदनाम करने की मंशा के चलते वामपंथी लेखक झूठ का आसरा हमेशा ही लेते आए हैं। क्या इन्हें पता नहीं कि भीड़-हिंसा के मामले में हिंदू भी वैसे ही शिकार बन रहे हैं जैसे कि मुस्लिम? 2014 से 2019 के बीच पांच वर्षों में यदि 32 मुसलमान मरे हैं तो 29 हिंदुओं ने भी जान गंवाई है। ये क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े हैं। घायलों की संख्या के मामले में तो हिंदू अधिक हैं, मुस्लिम 62 तो हिंदू 68। अमेरिका तथा अफ्रीका में नस्लीय हिंसा में इससे ज्यादा लोग हताहत होते रहते हैं, किंतु इन वामपंथियों ने इस अंदाज में चिट्ठी लिखी है, मानो हिंदुस्तान की राष्ट्रीय गतिविधि ही लिंचिंग है। क्या भारत की पुलिस व्यवस्था, न्याय प्रणाली इससे निपट नहीं रही? उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश पुलिस ने जांच करके पता लगाया है कि ऐसे 10 मामले, जिनमें ये दावा किया गया था कि जय श्रीराम न बोलने पर मार-पीट की गई, वस्तुतः झूठे थे, किंतु ये देश के मुख पर कालिख पोतने में कामयाब रहे। ये लोग न सिर्फ तथ्यों की लिंचिंग कर रहे हैं, बल्कि भारत की लिंचिंग की नापाक कोशिश भी कर रहे हैं। भारतीयों को इनकी बातों में नहीं आना चाहिए।

अजय मित्तल, मेरठ

असमंजस में कांग्रेस

पिछले दो महीने से नए अध्यक्ष की तलाश में जुटी कांग्रेस अभी भी असमंजस की स्थिति में है। कांग्रेसजन परिवार की ओर निहार रहे हैं और परिवार मौन धारण किए अनुकूल स्थिति की प्रतीक्षा कर रहा है। यह तो निश्चित है कि यदि परिवार से इतर अध्यक्ष बनाने की नौबत आई तो परिवार की पसंद ही अहम मानी जाएगी। वैसे अभी तो कांग्रेस में ऐसा कोई नेता दिखाई नहीं दे रहा जो अपने आप को अध्यक्ष पद का दावेदार बता सके। कुछ दिन पहले की गई पूर्व विदेश मंत्री नटवर सिंह की टिप्पणी के बाद तो परिवार से इतर अध्यक्ष बनने की संभावनाओं पर पूर्ण विराम लग गया है। नटवर सिंह ने कहा था कि परिवार से बाहर पार्टी का अध्यक्ष पद गया तो कांग्रेस चौबीस घंटे में बिखर जाएगी। यूं तो कांग्रेस में परिवार की स्तुति की पुरानी परंपरा रही है। कभी देवकांत बरुआ ने कहा था कि इंदिरा इज इंडिया एंड इंडिया इज इंदिरा। परिवार के प्रति यह सनातन परंपरा आज भी कायम है। कांग्रेस आज भी परिवार के आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। कांग्रेस के नेता शशि थरूर भी प्रियंका गांधी को अध्यक्ष बनाने के पक्षधर हैं। अब सब कुछ परिवार पर निर्भर है तो कार्यकर्ताओं को नया अध्यक्ष मिलने में देर नहीं होनी चाहिए।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

कोचिंग सेंटरों की मनमानी

देश के विभिन्न शहरों में कोचिंग सेंटरों की भरमार है। ये मनमानी फीस तो वसूलते ही हैं और अन्य तमाम नियमों का उल्लंघन भी करते हैं। विभिन्न परीक्षाओं में सफल होने की लालसा पाले युवा वर्ग इनके झांसे में आ जाता है। इन सेंटरों में न तो सुरक्षा के इंतजाम होते हैं और न ही विद्यार्थियों के लिए जरूरी सुविधाएं। हादसे की स्थिति में विद्यार्थियों की जान सांसत में पड़ जाती है। सरकार को चाहिए कि इनके लिए कुछ सख्त नियम बनाए और इसका उल्लंघन करने पर इन सेंटरों के संचालन पर रोक लगाई जाए।

विजय कुमार धनिया, नई दिल्ली

न्याय का रास्ता साफ

भारत की संसद ने तत्काल तीन तलाक को आपराधिक कृत्य करार देने वाले कानून के लिए अपनी मुहर लगा दी है। इसके साथ ही मुस्लिम बहनों को न्याय मिलने का रास्ता साफ हो गया। स्पष्ट है कि अब किसी ने इस अमानवीय विशिष्ट अधिकार का दुरुपयोग किया तो उसे जेल जाना होगा। जो अधिकार मुस्लिम महिलाओं को पहले मिल जाना चाहिए था उसके लिए सरकार को लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी। संख्या बल में हावी विपक्ष दो बार राज्यसभा में इसे रोक चुका था, लेकिन सरकार के कुशल राजनीतिक प्रबंधन ने इस बार बाजी पलट दी और जैसा पीएम मोदी ने कहा कि एक मध्यकालीन प्रथा इतिहास के कूड़ेदान तक सीमित हो गई। हमारा विश्वास है कि यह कानून महिलाओं को न्याय दिलाने वाले एक बड़े सामाजिक क्रांति का आधार बनेगा।

chandankarn9470@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय 1-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं स ा हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय ई शुल्क अतिरिक्त।